ज़ाकिरे शामे ग़रीबाँ उमदतुल उलमा आयतुल्लाह सय्यद कल्बे हुसैन रह०

समद अब्बास

उमदतुल उलमा मौलाना सय्यद कल्बे हुसैन उर्फ़ कब्बन साहब क़िब्ला 6 शाबान 1311 हि0 को सर्व श्रेष्ठ खानदान खानदाने इज्तेहाद, लखनऊ में पैदा हुए और आपका तारीख़ी नाम अली अख़्तर था। आपके पिता कुदवतुल उलमा मौलाना सय्यद आक़ा हसन साहब क़िब्ला हिन्दुस्तान के उच्चकोटि के नामवर उलमा में थे और समाज में आपको बहुत सम्मान प्राप्त था और आप धर्म के प्रचार–प्रसार ओर शियों की शिक्षा और आर्थिक समृद्धि के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। शियों की कई संस्थाओं की स्थापना में भी आपकी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

शिक्षा :

मौलाना कल्बे हुसैन ने प्रारम्भिक शिक्षा पारिवारिक परम्परा के अनुसार अपने पिता से प्राप्त की। उसके बाद आपने उस समय के प्रख्यात उस्तादों सय्यद मोहम्मद बाक़िर साहब, सय्यद मोहम्मद रज़ा साहब और सय्यद मोहम्मद हादी साहब आदि से शिक्षा ग्रहण की। फिर आप उच्च शिक्षा के लिए नजफ़े अशरफ़ गये और वहाँ तीन साल रहे और उच्चकोटि के उलमा से विद्या प्राप्त की। वहां से वापसी पर आपने ज़ाकिरी और ख़िताबत की ओर ध्यान दिया और मजलिसें पढ़ने लगे। हिन्दुस्तान में उस समय मौलाना सिब्ते हसन, मौलाना सय्यद मोहम्मद हुसैन साहब, मौलाना मकबूल अहमद दहलवी आदि ज़ाकरी के मैदान में छाये हुए थे। उमदतुल उलमा ने इन हालात में मजलिसें पढ़ना शरू कीं।

ज़ाकिरी का दौर :

उमदतुल उलमा की ज़ाकरी की शरूआत 1331 हि0 को इमामबाड़ा गुफरानमआब में उनके वालिद कुदवतुल उलमा सय्यद आक़ा हसन साहब की प्रेरणा से हुई। इस के पूर्व गुफ़रानमआब के इमामबाड़े में कोई ज़ाकिर पुराने तर्ज़ में मजलिसें पढ़ा करते थे। सन् 1331 हि0 के मुहर्रम से कुछ ही दिन पहले उनका आकस्मिक निधन हो गया तब कुदवतुल उलमा ने अपने बेटे मौलाना कल्बे हुसैन साहब से गुफरानमआब के इमामबाड़े में अशर–ए–मोहर्रम की मजलिसें पढ़ने के लिए कहा। पहले साल उन्होंने मजलिसों को लिखकर पढ़ा फिर उनकी ज़ाकरी निखरती गई और धीरे–धीरे उन्होंने ज़ाकिरी में अपनी एक विशेष शैली और पहचान बना ली और उनकी गणना हिन्दुस्तान की उच्चकोटि के ज़ाकिरों और ख़तीबों मे होने लगी।

वह सरल उर्दू भाषा और संतुलित लबो लहजे का प्रयोग करते थे और उनका अन्दाज़ संजीदा और पुरमतानत (गम्भीर) होता था। उनकी मजलिसें आम फ़हम होती थी। और वह धार्मिक मसलों को बड़े सहज तरीक़े से समझाते थे और मजलिसों में दीनी ज्ञान और चरित्र निर्माण पर ज़ोर देते थे। वह मसाएब इतने प्रभावी अन्दाज़ से पढ़ते थे कि श्रोतागण शोकाकुल हो कर खूब गिरया करते थे। उस समय भी लखनऊ को हिन्दुस्तान की अज़ादारी में मरकज़ीयत हासिल थी और उमदतुल उलमा की ज़ाकिरी ने लखनऊ की अज़ादारी में गुफरानमआब की अशर–ए–मुहर्रम की मजलिसों को मरकज़ीयत प्रदान की। इन मजलिसों मे बहुत बड़ा मजमा होता था जो समय के साथ बढ़ता ही गया।

मजलिसे शामें ग़रीबां :

मजलिसे शामें ग़रीबों की शुरूआत भी लखनऊ के गुफरानमआब के इमामबाड़े में 1924 ई0 के मुहर्रम से हुई। पहली शामें ग़रीबां की मजलिस मौलाना सिब्ते मोहम्मद हादी ने पढ़ी थी जिसमें

केवल 20–25 श्रोता थे। इसके बाद से उमदतुल उलमा कल्बे हुसैन साहब ने मजलिसे शामे ग़रीबां गुफ़रानमआब के इमामबाड़े में पढ़ना शरू की और चूंकि यह मजलिस अज़ादारी में एक जिद्दत (अन्वेषण) थी इस मजलिस को शीघ्र ही खास महत्व और स्थान प्राप्त हुआ और इस मजलिस की ख्याति फैलती गई। विशेषकर जब 1944 ई0 से यह मजलिस महाराजा महमूदाबाद महमूद हसन खाँ और उनके छोटे भाई महाराजकुमार अमीर अली खाँ साहब के प्रयासों से ऑल इण्डिया रेडियो से बराहेरास्त (डायरेक्ट) प्रसारित होने लगी तो इस मजलिस के सुनने वालों का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया और जहाँ जहाँ भी ऑल इण्डिया रेडियो का प्रसारण पंहुचता था लोग इस मजलिस के सुनने की प्रतीक्षा करते थे। मौलाना डा0 कल्बे सादिक़ साहब मजलिसे शामें ग़रीबां के सम्बन्ध में कहते हैं कि ''यह मजलिसे शामे ग़रीबां मेरे वालिद बहुत ही तैयारी से पढ़ते थे और यह उनकी शाहकार मजलिस हुआ करती थी। 1962 तक वालिद मरहूम पढ़ते रहे। 1963 में वह ग़िज़ा की नली में कैंसर के मूज़ी मर्ज़ में मुबतेला हुए। उस साल वह मुहर्रम की मजलिसें गुफ़रानमआब में नहीं पढ सके''। लगभग 40–45 मिनट के सीमित समय के अन्दर पूरे वाक़िय–ए–कर्बला, उसकी पृष्ठभूमि, तथा उसके दूरगामी परिणाम एंव प्रभाव, इस्लाम के इतिहास के विश्लेषण आदि पर अपने खास अन्दाज़ में प्रकाश डालते थे। और इमाम हुसैन, उनके परिवार वालों और साथियों पर शहादत के पहले और शहादत के बाद जो अत्याचार और जुल्म हुए उनका बड़ा ही मार्मिक वर्णन करते थे जिससे मजलिस में खूब आहो बुक़ा और गिरया (रूदन) होता था। यह कोई आसान काम न था और समन्दर को कूज़े (प्याले) में समोने के समान था। परन्तु उमदतुल उलमा इस कठिन कार्य को बड़े सहज ढंग से और पूरी दक्षता के साथ सम्पन्न करते थे और वास्तव में मजलिसे शामे ग़रीबाँ उनका शाहकार हुआ करती थी और हर साल की मजलिस पहले की मजलिसों से भिन्न होती थीं। उन्होंने मजलिसे शामें ग़रीबां को उरूज (चरम बिन्दु) पर पंहुचा दिया और इसी लिहाज़ से वह ज़ाकिरे शामें ग़रीबाँ के लक़ब (उपाधि) और नाम से विख्यात हुए। हज़रत 'मानी' जायसी ने उनको ''ज़ाकिरे शामे ग़रीबाँ ए दिले ज़हरा के चैन'' कहकर सम्बोधित किया है।

यह मजलिसें अदबी हैसियत से भी बहुत उच्चस्तर की होती थीं और इस लिहाज़ से भी उनका बड़ा महत्व था। उमदतुल उलमा की शामें ग़रीबाँ की मजलिसों में उर्दू भाषा का चमत्कार श्रोताओं को प्रभावित किये बिना नहीं रहता था। उनका एक खास लबोलहजा होता था और ज़बान में सलासत, शीरीनी और अदबी लताफ़त होती थी छोटे और आम फ़हम जुमलों का इस्तेमाल उमदतुल उलमा के बयान की खूबी और खुसूसियत थी और चुन–चुन कर धीमे–धीमे बोले गये अल्फ़ाज़ एक कोहराम मचा देते थे।

वह एक तुफान बरपा कर गया सारे ज़माने में
सरे मिम्बर किया जिसने ख़िताब आहिस्ता आहिस्ता।

इमाम हुसैन से अक़ीदत रखने वाले और उर्दू के शैदाई (प्रेमी) दूसरे समुदाय और धर्म के लोग भी आप की शामें ग़रीबाँ की मजलिस को बड़े शौक़ से रेडियो पर सूनते थे। मैं खुद दूसरे समुदाय और धर्मों के कई लोगों को जानता हूँ जो शामें ग़रीबां की मजलिस को कानपुर में शौक़ से रेडियो पर सुनते थे और उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते थे।

आपके बाद शामें ग़रीबाँ की पहली पजलिस 1963 ई0 में आपके फ़रज़न्द डॉ0 मौलाना कल्बे सादिक़ साहब ने पढ़ी। उसके बाद आक़ा–ए–शरीयत मौलाना कल्बे आबिद साहब अशर–ए–मोहर्रम के साथ शामें ग़रीबाँ की मजलिस पढ़ते रहे और यह सिलसिला उनके देहान्त तक जारी रहा और उनके बाद अब इस मजलिस को उनके बेटे क़ायदे मिल्लत मौलाना सय्यद कल्बे जवाद साहब पढ़ रहे हैं।

आपका व्यक्तित्व तथा सेवाएं :

उमदतुल उलमा ज्ञानी, निष्ठावान, दयालू, मृदुलभाषी और मिलनसार स्वभाव के थे। आप इत्तेहादे बैनुलमुस्लेमीन के हामी और विभिन्न

धर्मों के बीच रवादारी के समर्थक थे। इसी कारण हर फ़िरके, क़ौम और धर्म के मानने वाले लोग आपका बड़ा सम्मान करते थे। आप यतीमों, बेवाओं, और ग़रीब लोगों की मदद करते रहते थे। आपने क़ौम और मिल्लत की भलाई के कामों में हमेशा रहनुमाई की। आपने क़ौम को व्यापार के लिए भी प्रेरित और प्रोत्साहित किया। आप ऑल इण्डिया शिया कान्फ्रेंस में भी सक्रिय रहे और आपने उसके 28 व 29 दिसम्बर 1955 को मेरठ में होने वाले अधिवेशन और 1957 में कलकत्ता में होने वाले जलसे की अध्यक्षता भी की। आपने धार्मिक पत्रिकाएं प्रकाशित कीं और क़ौमी विपदाओं में सहायता कार्यों के आयोजन में हमेशा अगुवाई की। आप आसिफ़ी मस्जिद के इमामे जुमा थे और कई वक़्फ़ों की देखभाल की जिम्मेदारी भी आप पर थी।

आपका देहान्त :

6 अक्टूबर 1963 को बहत्तर वर्ष की आयु में आपका देहान्त हो गया। देहान्त की ख़बर फैलते ही लखनऊ और आस पास के शहरों में शोक की लहर दौड़ गई और आपके चाहने वालों की आंखे नम हो गईं। आपके जनाज़े में उस समय का सबसे बड़ा मजमा था। जिसमें पास के कई जिलों के लोग और दूसरी कौमों के लोग भी बड़ी संख्या में शरीक थे। आप अपने वंशजों की कब्रों के बीच गुफ़रानमआब के इमामबाड़े में दफ़्न हुए।

आपके पुत्र :

आपने अपने पीछे पांच नेक और तेजस्वी पुत्र छोड़े।

1. सफ़वतुल उलमा मौलाना सय्यद कल्बे आबिद साहब
2. सय्यद कल्बे हादी साहब
3. सय्यद कल्बे बाक़िर साहब
4. मौलाना डा0 सय्यद कल्बे सादिक़ साहब
5. सय्यद कल्बे मोहसिन साहब

आपकी शायरी :

यह बहुत कम लोग जानते हैं कि उमदतुल उलमा ने उर्दू और फ़ारसी में शायरी भी की। आपके उर्दू कलाम के चन्द नमूने निम्न में प्रस्तुत किये जाते हैं:

ख़ताओं पर खताऐं हो रही थीं नावक अफ़गन से
इधर तीरों से बनता जा रहा था आशयाँ अपना
हाय 'अख़्तर' तुझे खुदा बख़्शे
तेरी हर बात याद आती है।

+++

क्यों खिली चादर की कलियाँ, क्यों किया बुलबुल ने शोर
हम लहेद में हैं तो तुरबत पर बहार आने से क्या।

+++

कोई पूछे साकिनाने क़ब्र से
दर्दे दिल अब भी है या आराम है।

+++

अब ग़म न रहा, आहें न रहीं, नाले न रहे, उलझन न रही
दिल जाते ही सोज़े उल्फ़त की एक–एक निशानी खत्म हुई।
जो कुछ था बहुत था जीते जी जब मैं न रहा फिर कुछ न रहा
मुंह फेर के दुनिया यूँ सोई जैसे कि कहानी ख़त्म हुई।

+++

उड़ते फिरते हैं चमन में मेरे उखड़े हुए पर
ढूंढती फिरती है यूँ कूव्वते परवाज़ मुझे।

+++

ख़ल्क़े आलम है करिश्मा इश्क की तासीर का
आस्माँ इक तंग हल्क़ा है मेरी ज़न्जीर का।

नौहा

सितम हज़ारों हुए सिब्ते मुसतफ़ा के लिए
बुला के शाह को मेहमाँ किया जफ़ा के लिए।
हुसैन हाथों पे असग़र को लेके कहते थे
पिला दो पानी मेरे लाल को खुदा के लिए।
जवाब मिलता था क़तरा न देंगे हम उसको
गला सग़ीर का है नावके क़ज़ा के लिए।
सदा यह शाह ने दी दूध माँ का खुश्क हुआ
यह बच्चा आया है पानी की इल्तिजा के लिए।
कहा यह शिम्र ने दरिया से जानवर पी लें
है बन्द आब बिने सिब्ते मुस्तफ़ा के लिए।
कोई अलम न हो 'अख़्तर' को जुज़ ग़मे शहेदीं
हुआ है ख़ल्क़ यह दिल शाह पर बुका के लिए।

+++